Shodh-Rityu तिमाही शोध–पत्रिका

PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

ISSUE-28 **VOLUME-5** ISSN-2454-6283 **April-Jun**–2022

IMPACT FACTOR **-** **(IIJIF-7.312)** **SJIF-6.586,** IIFS-4.125,

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

सम्पादक

डॉ.सुनील जाधव ,नांदेड

9405384672

तकनीकी सम्पादक

अनिल जाधव, मुंबई

पत्राचार हेतु पता–

महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड–431605

वार्षिक परामर्श मंडल (2022)

- प्रो .डॉ.रामप्रसाद भट, हैम्बुर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी
- प्रो.डॉ.रंजित उपुल, केलनिया विश्वविद्यालय, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.रिदिमा निशादिनी लंसकारा, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.अनुषा सल्वाथुरा, श्रीलंका
- प्रो.डॉ.नुर्मातोव सिराजोद्दीन, उज्बेकिस्तान
- सौ.सविता तिवारी, मॉरिशस
- प्रो.डॉ.मक्सीम देम्चेंको, मास्को, रशिया
- प्रो.डॉ.हिदायतुल्लाह हकीमी, जलालाबाद, अफगानिस्तान
- प्रो.हुरुई,उप–संकायाध्यक्ष,अफ्रीकी–एशियाई भाषा एवं संस्कृति संकाय क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन
- प्रो.विवेक मणि त्रिपाठी, चीन
- प्राचार्य डॉ.आर.एन.जाधव,पीपल्स कॉलेज,नांदेड
- प्र.उपकुलपति डॉ.जोगेन्द्रसिंह बिसेन, स्वामी रामानंद तीर्थ विश्वविद्यालय, नांदेड
- प्रो.डॉ.मुकेशकुमार मालवीय, हिन्दू बनारस विश्वविद्यालय,बनारस
- प्रो.डॉ.राजेद्र रावल,राजकोट,गुजरात
- प्रो.डॉ.अरविंद शुक्ल,उत्तर प्रदेश
- प्रो.डॉ.संगम वर्मा,पंजाब
- प्राचार्य.डॉ.राजेन्द्र प्रसाद,प्रतापगढ
- प्राचार्य डॉ.प्रवीण कुमार सक्सेना, गांगड़तलाई,राजस्थान
- प्रो.डॉ मंगला रानी, पटना
- प्रो.डॉ.पठाण रहीम, हैदराबाद
- प्रो.डॉ.श्यामराव राठोड, तेलंगाना
- प्रो.डॉ.भारत भूषण, पंजाब
- प्रो.डॉ.परिमल अम्बेकर, गुलबर्गा
- प्रो.डॉ.ओमप्रकाश सैनी, हरियाणा
- प्रो.डॉ.लक्ष्मी गुप्ता,यमुनानगर,हरियाणा
- प्रो.डॉ.शबाना दुर्यानी, (उर्दू) नांदेड़

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

अनुक्रमणिका

1.एक कोई था कहीं नहीं–सा : साम्प्रदायिकता से विस्थापन तक की अन्तर्यात्रा..... 5
–[1]डॉ. राजेश कुमार शर्मा, [2]आशीष जायसवाल 5
2.निराला काव्य की भावमूलक आत्मपरकता 8
–डॉ.अरविन्द कुमार 8
3.Democracy, Economic Planning And Socio- Economic Development In India: The Conceptual Construct As A Trade- Off Between Freedom And Growth......11
-Shailendra Tripathi.....11
4.हिंदी यात्रा–साहित्य : बीसवीं शताब्दी 14
–डॉ.रेखा उप्रेती 14
5.आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का आरंभिक जीवन और प्रेरणाएँ.....17
–डॉ.प्रियंका सिंह.....17
6.वर्तमान परिवेश में संत कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता.....22
–डॉ.पठान जे.सी. 22
7.भारतीय आख्यान की विशेषताओं केसंदर्भ में 'हमज़ाद' का अध्ययन 24
–पवन कुमार ईश्वर.....24
8.स्मृतियों का भाष्य लेखन.....27
–[1]अल्ताफ ,[2]डॉ0 दिनेश कुमार ओझा.....27
9.हिंदी नाटक–रंगमंच और हिंदी नाटक–दलित रंगमंच 30
–डॉ.भानुदास भिकाजी आगेडकर.....30
10.अलवर जिले की बैकिंग प्रणाली में साइबर अपराध के प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन.....34
–[1]कोमल अग्रवाल, [2]डॉ.घनश्याम सैनी.....34
11.साईबर अपराध के अन्तर्गत संचार माध्यमों की भूमिका 36
—[1]कोमल अग्रवाल, [2]डॉ.घनश्याम सैनी 36
12.हिंदी दलित कहानी: एक विकास यात्रा.....37
–कुसुम सबलानिया.....37

ISSN 2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

प्रसंगित किया है। **2 विज्ञानेश्वर–** याज्ञवल्क्य स्मृति पर उन्होंने मिताक्षरा टीका लिखी। स्मृति साहित्य में मिताक्षरा का अपूर्व स्थान है। इसका प्रभाव भारतीय व्यवहार में अत्यधिक रहा। केवल बंगाल में दायभाग की प्रबलता रही। मिताक्षरा टीका 1070–1100 ई. के मध्य की रचना है। मिताक्षरा में उदार विचार व्यक्त हए हैं। मिताक्षरा भाष्य पर भी कई भाष्य लिखे गये जिनमें विश्वेश्वर, नन्द पण्डित एवं बालभट्ट उल्लेखनीय हैं। **3 जीमूतवाहन–** जीमूतवाहन का याज्ञवल्क्य स्मृति पर दाय भाग सर्वश्रेष्ठ भाष्य है। इनकी व्यवहार मातृका में व्यवहार विधियों का वर्णन है। हिन्दू कानूनों में विशेषतः रिक्थ, विभाजन, स्त्री–धन, पुनर्मिलन आदि के नियमन में दायभाग ने बहुत योग दिया है। बंगाल तथा जहाँ मिताक्षरा लागू नहीं हैं वहाँ दायभाग का प्रमाण माना जाता है। दायभाग के भी कई भाष्यकार हुए। यह 1090.–1130 ई. के मध्य अवधि की रचना है।

दाय भाग और मिताक्षरा के मुख्य विभेद हैं– दाय भाग में पुत्रों का जन्म से पैतृक सम्पत्ति में अधिकार नहीं है। पिता के स्वत्व के विनाश पर (अर्थात पिता की मृत्यु, पतित हो जाने या सयासी हो जाने पर) पुत्र दाय पर अधिकार पा सकते हैं का पिता की इच्छा पर उसमें और पुत्रों में विभाजन हो सकता है। पति के अधिकार पर विधवा का अधिकार हो जाता है भले ही पति या उसके भाई का संयुक्त धन हो। । अपरार्क– याज्ञवल्क्य स्मृति पर एक बहुत ही विस्तृत टीका लिखी है जो अपरार्क–याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र निबन्ध के नाम से सुप्रसिद्ध है। इनकी यह रचना 1000–1200 ई. की मानी जाती है। कश्मीर में अपरार्क की टीका चलती है। जालपाणि– इन्हें उपाध्याय शूलपाणि भी कहा जाता है। बंगाल में धर्मशास्त्रकारों में जीमतवाहन के उपरान्त शूलपाणि का नाम लिया जाता है। इनकी 'दीपकलिका टीका प्रसिद्ध है। इनकी रचना अवधि 1375–1460 ई. की मानी जाती है। जीमतवाहन के दायभाग लक्ष्मीधर के कल्पतरू तथा रघुनन्दन के भाष्य के बाद शूलपाणि का बंगाल में ज्यादा महत्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

(**1**)आर्य प्रतिभा : स्मृतियों में राजनीति और अर्थशास्त्र : विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी 1987। (**2**)उपाध्याय, आचार्य बलदेव : संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग 1 तथा 2; शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1973 । (**3**)उपाध्याय, आचार्य बलदेव : वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1973। (**4**)उपाध्याय, भगवत शरण : भारतीय संस्कृति के स्रोत, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, प्रा.लि., नई दिल्ली, 1978। (**5**)न कोसाम्बी, दामोदर धर्मानन्दः प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977। (**6**)काणे, पाण्डुरंग वामन : धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग 1 और 5), हिन्दीसमिति, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, 1973। (**7**)जायसवाल, काशी प्रसाद : हिन्दू राजतंत्र, खण्ड (1 एवं 2) (अनु.) रामचन्द्र वर्मा, नागरी प्राचारिणी सभा, वाराणसी। (**8**)विद्यालंकार, निरूपण : भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, साहित्य (**9**)भण्डार, मेरठ, 19711 विद्यालंकार, सत्यकेतु : भारत का प्राचीन इतिहास, सरस्वती वेदालंकार सदन, मसूरी, 1967।

9.हिंदी नाटक–रंगमंच और हिंदी नाटक–दलित रंगमंच

–डॉ.भानुदास भिकाजी आगेडकर
सह–प्राध्यापक एवं अध्यक्ष,
हिंदी विभाग, किसन वीर महाविद्यालय, वाई,

'रंगमंच' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। रंगमंच द्वारा ही नाटक सम्प्रेषित होता है। वस्तुतः रंगमंच अपने में एक परिपूर्ण संस्था, एक परिपूर्ण सर्जनात्मक अभियान है। 'रंगमंच' नाटक के संवेदनात्मक सम्प्रेषण का एक माध्यम है। रंगमंच और नाटक का सम्बन्ध परस्परावलंबी है। परिणामतः नाटक और रंगमंच का अभेद आज प्रायः सभी ने स्वीकारा है। हिंदी रंगमंच का इतिहास पश्चिमी रंगमंच या पारसी रंगमंच की तुलना में उतना लंबा इतिहास नहीं है फिर भी हिंदी रंगमंच का अपना अलग–सा विकासात्मक, गौरवपूर्ण इतिहास है। इन नई पिढी के प्रयोगधर्मी नाटक और नाटककारों के समान स्वदेश दिपक जी जैसे वर्तमान युगीन अनेक रचनाकार अपनी नाटयकृतियों की बदलती रंगमंचीय संकल्पना तथा हर रोज बदनेवाली नई तांत्रिक उपलब्धियों को ध्यान में रखकर रचनात्मक नाटय निर्मीती करते हुए, आज हिंदी रंगमंच को समृध्द बनाने के लिए अपनी अपनी ओर से महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। हिंदी दलित रंगमंच उसी का एक सशक्त उदाहरण है। वर्तमान युगीन अनेक नाट्यकार दलितों की भयंकर स्थिति, उनकी पीड़ा, यातना तथा उनके करुणामय आक्रोश के साथ–साथ उन पर केवल वे अस्पृश्य जाति के है इसलिए किए जानेवाले अमानवीय अन्याय, अत्याचार की चर्चा अपनी नाटयरचना में करते हुए दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त दलित रंगमंच की दृष्टि से यह बडी सौभाग्य की बात है कि आज,नयी पीढ़ी के कुछ सशक्त नाटककार दलित रंगमंच को समृध्द बनाने के लिए नए सिरे से प्रयत्न कर रहे हैं, साथ ही साथ आज ऐसी अनेक नाटय मंडलियाँ, नाटय कंपनियाँ, अनेक थियेटर्स, नाटय संस्थाएँ इसके लिए अपनी ओर से सक्रिय योगदान दे रही है।प्रस्तुत शोधलेख में हिंदी नाटक रंगमंच और हिंदी दलित नाटक रंगमंच की स्थिति को प्रस्तुत किया है।

'रंगमंच' परंपरागत मान्यताएँ –'रंगमंच' शब्द का प्रयोग व्यापक और सीमित दोनों अर्थों में किया जाता है। इसकी चर्चा प्राचीन संस्कृत साहित्य में अधिक सूक्ष्म एवं विस्तृतता से की हुई मिलती है। संस्कृत नाटयाचार्य भरतमुनि के 'नाटयशास्त्र' में रंगमंच का जो सूक्ष्म शास्त्रीय विवेचन पाया जाता है, वह इसी बात का प्रमाण है। पाश्च्यात्य प्रभावानुसार रंगमंच के लिए अंग्रेजी में दो शब्द प्रयोगित किए जाते हैं – 'स्टेज' और 'थियेटर'। इनमें से स्टेज

शब्द प्रायः नाटयमंडप अथवा रंगशाला के लिए प्रयुक्त होता है। किंतु इससे रंगमंच का केवल बाहय स्वरुप ही व्यक्त होता है, आन्तरिक सूक्ष्म स्वरुप व्यक्त नहीं होता। इसकी तुलना में 'थियेटर' यह शब्द रंगमंच के बाहय और आन्तरिक दोनों अंगो की अभिव्यक्ति करता है। थियेटर के अन्तर्गत रंगभवन, नाटयकृति और समस्त रंगकर्म, प्रदर्शन में निहित शिल्प सम्मिलित रहते हैं। जैसे रंगमंच शब्द का प्रयोग करने से निर्देशक, अभिनेयता, दृश्य , अभिकल्पक आदि सभी का परिज्ञान होता है, थियेटर शब्द द्वारा वही ज्ञान मिलता है। मानो थियेटर शब्द रंगमंच की व्यापक अवधारणा को उजागर करता है। यही कारण है कि ज्ञानसिंह मान 'रंगमंच' 'स्टेज' तथा 'थियेटर' समानार्थी शब्द बताते हुए एक स्थान पर लिखते है कि ''रंगमंच शब्द का प्रयोग करने से निर्देशक, अभिनेता, दृश्य, अभिकल्पना इत्यादि सभी का परिज्ञान प्राप्त होता है। थियेटर या नाटक अपने अर्थ विस्तार में उन समस्त कलात्मक उपादानों को समाविष्ट करता है, जो नाटयात्मक अनुभूति के प्रदर्शन के आवश्यक अंग है। रंगमंच द्वारा ही नाटक सम्प्रेषित होता है। रंगमंच नाटयवृत्ति के वाहन की पूर्ण कला है।''1 ज्ञानसिंह मान के समान प्राचीन संस्कृत आचार्यों से लेकर वर्तमान युगीन विद्वानों तक सभी की 'रंगमंच' संबध में यही मान्यता है कि रंगमंच भावों को अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करता है। उन सब भावों को जो मानवीय चेतनाओं को स्पन्दित करते हुए ज्ञानेंद्रियों को जगाते है। वस्तुतः रंगमंच अपने में एक परिपूर्ण संस्था, एक परिपूर्ण सर्जनात्मक अभियान होता है। इसमें एक ओर प्रमुख आधार प्रस्तुत करनेवाली नाटकृति होती है तो दूसरी ओर निर्देशक, अभिनेता, दृश्य, अभिकल्पना की मंचीय सृष्टि होती है। इस प्रकार रंगमंच एक विलक्षण सम्बन्ध–सूत्रता के सहारे जन्म लेता है। वह किसी एक तत्व का नाम नहीं है। तो वह उन सब तत्वों का समन्वय है, जिनसे वह निर्मित होता है। इस सम्बन्ध में पाश्च्यात्य आचार्य रिचर्ड साऊदर्न का कहना है कि ''रंगमंच प्याज के दाने की तरह है, उसके एक–एक छिलके को निकालते जाइए, तो लगेगा कि यही रंगमंच कला है यानी कभी नाटक, कभी , दृश्य सजा, कभी संवाद, कभी अभिनय। एक–एक छिलके को अलग अलग छीलते जाऐंगे, तो रंगमंच का सही स्वरुप हाथ नहीं लगेगा। रंगमंच की कला तो सम्पूर्ण वस्तु है और उसी में उसका सार तत्व है, सम्प्रेषण का एक साकार माध्यम है।''2

रंगमंच और नाटक– 'रंगमंच' नाटक के संवेदनात्मक सम्प्रेषण का एक माध्यम है। नाटयविद्या का यही वैशिष्टय उसे अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में सरस बना देता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में नाटशास्त्र को पंचमवेद बताया गया है। तो आधुनिक गद्य साहित्य की विविध विधाओं में नाटक की श्रेष्ठता निर्धारित करते हुए दशरथ ओझा जी ने आचार्य वामन का मत ही उध्दृत किया है। उसी मत को उध्दृत करते हुए डॉ.गजानन सुर्वे जी ने एक स्थान पर लिखा है कि ''नाटक और साहित्य की अन्य विधाओं में मौलिक तात्विक अंतर है। यह विभाजन रेखा खींचनेवाला नाटक का प्राण तत्व रंगमंच ही है। नाटक की सफलता–असफलता का मानदंड उसकी मंचीयता ही है।''3 इसी बात को अधिक स्पष्ट करनेवाले नेमिचन्द्र जैन जी का मानना है कि ''नाटक साहित्यिक अभिव्यक्ति की ऐसी विधा है, जो केवल साहित्य नहीं उससे अधिक कुछ और भी है, क्योंकि रचना की प्रक्रिया लेखक द्वारा लिखे जाने पर ही समाप्त नहीं होती, उसका पूर्ण प्रस्फुटन और सम्प्रेषण रंगमंच पर जाकर ही होता है। रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राण–प्रतिष्ठा के बिना नाटक को सम्पूर्णता प्राप्त नहीं होती, इसलिए रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन या उसके विविध अंगों और पक्षों पर विचार अपूर्ण नहीं भ्रामक है।''4 रंगमंच और नाटय विधा या नाटय कृति की अभिन्नता को स्पष्ट करते हुए गोविन्द चातक जी रंगमंच और नाटक को एक ही मानते हैं । उनका कहना है कि ''नाटक को एक और रंगमंच की दूसरी कला मानकर चलना ठीक नहीं। दोनों मिलकर एक ही कला को जन्म देते हैं, चाहे उसे 'नाटय–कला' कहा जाए या 'रंगमंच कला'। गोविंद चातक जी के समान अनेक आचार्यों ने रंगमंच और नाटक का समन्वय एकात्म रुप में स्थापित किया है। इस संदर्भ के अनुरुप संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि साहित्य की विभिन्न विधाओं में नाटक ही एक ऐसी विधा है, जिसकी सर्जनात्मकता का निर्धारण केवल रचनाकार की ही क्षमता पर निर्भर नहीं करता, उसके लिए रचना से बाहर रंगमंच की अपेक्षाएँ भी महत्वपूर्ण भाग अदा करती है। नाटक और रंगमंच एक प्रकार से अन्योन्याश्रित कलाएँ है। इससे यही प्रमाणित होता है कि रंगमंच, नाटक विधा का एक अभिन्न एवं आवश्यक आयाम है। रंगमंच के बिना नाटक का विचार या उसकी चर्चा, अधूरी ही नहीं, तो असंभव होगी । श्री.वेदपाल खन्ना 'विमल' जी के अनुसार 'नाटक का अभिप्राय ही केवल उस रचना से है जिसका रंगमंच पर नाटय (अभिनय) किया जाए।'5 उनका मानना है कि अभिनय ही नाटक का प्राण होता है और अभिनीत होने में ही नाटक की सच्ची सार्थकता होती है। इस दृष्टि से देखे तो नाटक की सच्ची परीक्षा रंगमंच पर ही होती है और रंगचंम कला की चर्चा एक सफल नाटय प्रयोग के प्रस्तुतीकरण के बाद ही होती है। रंगमंच और नाटक का सम्बन्ध परस्परावलंबी है। परिणामतः नाटक और रंगमंच का अभेद आज प्रायः सभी ने स्वीकारा है।

हिंदी रंगमंच–हिंदी रंगमंच का इतिहास पश्चिमी रंगमंच या पारसी रंगमंच की तुलना में उतना लंबा इतिहास नहीं है फिर भी हिंदी रंगमंच का अपना अलग–सा विकासात्मक, गौरवपूर्ण इतिहास है। जिसके अनुसार सन 1843 में लखनऊ के सुप्रसिध्द नवाब वाजिद अली शाह ने रासलीला के आधार पर हुजुरबाग में एक रहस का सफल मंचन किया था। इससे प्रेरित होकर वाजिद अली शाह ने 'अफसाना ए इश्क' का सफल मंचन किया तत्पश्चात 1853 में आगा हसन 'अमानत' लखनवी ने 'इंदर सभा' की रचना करके उत्तरी भारत में अनेक जगह अनेक बार उसका सफल मंचन किया।''6 इसकी भाषा हिंदी उर्दू मिश्रित थी तथा इसका अधिकांश भाग गानों से भरा पडा था। शेरो–शायरी, श्रृगांरिकता, गजल, दादरा, शास्त्रीय गायन आदि के कारण यह मंचीय प्रयोग अधिक लोकप्रिय हुए जिसे पारसी रंगमंच परंपरा ने बडी सहजता से अपनाया था। इस समय के अधिकतर लेखकों ने पारसी रंगमंच के लिए अपने नाटक लिखे हुए दिखाई देते हैं । 'वीर बालक अभिमन्यु' नामक राधेश्याम 'कथावाचक' द्वारा लिखा गया पहला हिंदी नाटक पारसी रंगमंच पर काशी की नागरी नाटक मंडली ने सन 1922 में अत्यंत सफलता से खेला था। इस समय तक लिटिल थियेटर ग्रुप, रॉयल थियेटर और काशी की नागरी नाटक मंडली अपनी–अपनी ओर से पारसी रंगमंच के सहारे मिश्र भाषाओं के अनेक नाटकों के मंचीय प्रयोग बडी सफलता से प्रस्तुत कर रहे थे। किंतु इन पारसी रंगमंचीय नाटकों में तडकती–भड़कती कामुक श्रृगांरिकता का अधिक प्रदर्शन होने के कारण पारसी रंगमंच की प्रतिक्रिया स्वरुप आधुनिक हिंदी साहित्य के उदगाता भारतेन्दु जी ने हिंदी नाटकों की रचना करके स्वयं को हिंदी नाटय–जगत में एक श्रेष्ठ मौलिक नाटककार के रुप में प्रस्तुत किया था। भारतेन्दु जी न केवल नाटककार थे, वे एक अच्छे अभिनेता और निर्देशक भी थे। नाटक के नये रुप की तलाश में उन्होंने अलग–अलग नाटयरुपों को समन्वित कर एक अव्यावसायिक रंगमंच की प्रतिष्ठा की थी। इस कार्य में लोक नाटकों से उन्होंने गीत, चित्रसज्जा, मौन–झांकी और पद्यात्मक संवाद ग्रहण करके उन्होंने अपने नाटकों को जनाभिमुख बना दिया था। हिंदी नाटकों को रंगमंच के साथ संयुक्त करने के उनके प्रयत्नों में 'अंधेरनगरी' नाटक के मंचीय प्रयोगों की सफलता इसी बात का निर्देश है। 'अंधेरनगरी' सहीत भारतेन्दु जी के अधिकांश नाटक अभिनेयता की दृष्टि से महत्व रखते हुए दिखाई देते हैं। हिंदी रंगमंच के इस उद्भव काल में भारतेन्दु जी का यह रंगमंचीय योगदान निश्चित ही अद्वितीय रहा है। भारतेन्दुजी सहित इस युग के अन्य नाटककारों के अनेक नाट्यकृतियों को कालिदास अकादमी, इलाहाबाद, हिंदी नाटय समिति, हार्डिज थियेटर, प्रयाग आदि ने बडी ही सफलता से मंचस्थ किया था। भारतेन्दुजी के पश्चात हिंदी रंगमंच में जयशंकर प्रसाद जी का नाम लिया जाता है। वैसे तो उनके अधिकतर नाटक रंगमंच की दृष्टि से एक प्रश्नचिन्ह जैसे ही है फिर भी काशी की रत्नाकार रसिक मंडली, नागरी नाटक मंडली, भारतेन्दु नाटक मंडली, हरिहर समिति ने उनके 'चंद्रगुप्त' नाटक को मंचित किया था। जयशंकर प्रसादजी के पश्चात हिंदी रंगमंच पर राष्ट्रीय एकात्मता, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक उत्थान का अधिक प्रबल रुप प्रस्तुत हुआ दिखाई देता है। इस युग में हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द वल्लभ पंत, उदय शंकर भट्ट, लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास आदि रचनाकारों का हिंदी नाटय क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हिंदी रंगमंच के योगदान की दृष्टि से देखे तो इनमें से गोविन्द वल्लभ पंत जी की 'अंगूर की बेटी', 'अंतःपूर का छिद्र', 'अधुरी मूर्ती', 'अंधेरी बस्तियॉ' आदि नाटयरचनाएं अधिक सफल रही दिखाई देती है। इस समय के अनेक नाटय मंडलियों ने पंत जी के समान उदयशंकर भट्ट (मुक्तिपथ), लक्ष्मीनारायण मिश्र (राक्षस का मंदिर, सिंदुर की होली), सेठ गोविन्ददास (विश्वप्रेम, सेवापथ) के नाटकों का अलग–अलग शहरों में समय–समय पर सफल मंचन करके हिंदी रंगमंच को अधिक समृध्द किया हुआ दिखाई देती है। इसी बीच स्वतंत्रतापूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में हिंदी रंगमंच को सशक्त बनाने का कार्य सन 1944 में स्थापित पृथ्वी थियेटर्स के माध्यम से स्व. पृथ्वीराज कपूर जी ने किया हुआ दिखाई देती है। हिंदी नाटक के जन्मदाता भारतेन्दु जी के समान स्व.पृथ्वीराज कपूरजी भी एक उत्कृष्ट अभिनेता,कुशल निर्देशक तथा एक सफल और मजबूत निर्माता थे। उन्होंने अपने पृथ्वी थियेटर के माध्यम से 'दीवार', 'गद्दार','पठान' किसान' जैसे एक से एक कुल आठ सुंदर नाटकों का रंगमंचीय प्रदर्शन किया था। स्व.पृथ्वीराज कपूरजी के बाद हिंदी रंगमंच को प्रतिष्ठा प्रदान करनेवाले अनेक नाटककार एवं अनेक नाट्यकृतियों का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। जैसे उपेद्रनाथ अश्क (छटा बेटा, अंजोदीदी,अलग–अलग रास्ते) राजकुमार वर्मा (पृथ्वी का स्वर्ग), जगदीशचंद्र माथुर (कोणर्क,शारदीया) मोहन राकेश (आषाढ का एक दिन,लहरों के राजहंस, आधे–अधूरे) लक्ष्मीनारायण लाल (अंधा कुऑ),रमेश मेहता (अंडर सेक्रेटरी),विनोद रस्तोगी (नये हाथ), ज्ञानदेव अग्निहोत्री (नेफा की एक शाम),धर्मवीर भारती (अंधायुग)। इन प्रमुख नाटककारों के समान अगली पिढी के अनेक नाटककारों ने अपने प्रयोगधर्मी नाट्यकृतियों का निर्माण रंगमंच को ध्यान में रखकर ही किया हुआ दिखाई देता है। जैसे नरेश मेहता(खंडीत यात्राएँ),विष्णु प्रभाकर,(युगे युगे क्रांति), लक्ष्मीकांत वर्मा (तीसरा आदमी), चिरंजीत(घेराव), मन्नू भंडारी(बिना दिवारों का घर)शंकर शेष (खजुराहों का शिल्पी), रमेश बक्षी (देवयानी का कहना है) दुष्यंतकुमार (एक कंठ विषपायी),सुरेंद्र वर्मा (द्रौपदी) आदि । इन नई पिढी के प्रयोगधर्मी नाटक और नाटककारों के समान स्वदेश दिपक जी जैसे वर्तमान युगीन अनेक रचनाकार अपनी नाटयकृतियों की बदलती रंगमंचीय संकल्पना तथा हर रोज बदनेवाली नई तांत्रिक

उपलब्धियों को ध्यान में रखकर रचनात्मक नाटय निर्मीती करते हुए, आज हिंदी रंगमंच को समृध्द बनाने के लिए अपनी अपनी ओर से महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

हिंदी दलित रंगमंच –डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर जी के समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और न्याय से संबंधित विचार आत्मसात करने के पश्चात साहित्यकार को जो दृष्टिकोण प्राप्त होता है, उस दृष्टिकोण की सहायता से अपने–आपको तथा अपने आस–पास बिखरे हुए वास्तव को ठीक से समझने की उत्कट इच्छाशक्ति का शब्दरूप अविष्कार दलित साहित्य है। यह अविष्कार मराठी साहित्य में एक सैलाब की तरह आया था। जिसने पूरे देश–विदेश के साहित्य जगत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए हर भाषा के साहित्यकार को उसका अनुवाद या अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया था। आज–कल हिंदी साहित्य विश्व में चर्चित दलित साहित्य,दलित विमर्श,दलित चेतना का साहित्य उसी का प्रमाण है। मराठी दलित साहित्य जिन मूल्यों को,जिन विचारों को अपनाकर जिस उद्देश की पूर्ति को लक्ष्य करके अपना अलग–सा अस्तित्व निर्माण कर चुका आज हिंदी दलित साहित्य उन्हीं बातों को अपनाकर पूरी ताकत से विकसित होकर स्वयंपूर्ण बनने की कोशिश करता हुआ नजर आ रहा है। मराठी के समान आज हिंदी साहित्य के पद्य सहित गद्य की सभी विधाओं में दलित साहित्य ने अपनी अलग–सी पहचान बनायी है। हिंदी दलित रंगमंच उसी का एक सशक्त उदाहरण है। वर्तमान युगीन अनेक नाट्यकार दलितों की भयंकर स्थिति, उनकी पीड़ा, यातना तथा उनके करुणामय आक्रोश के साथ–साथ उन पर केवल वे अस्पृश्य जाति के है इसलिए किए जानेवाले अमानवीय अन्याय, अत्याचार की चर्चा अपनी नाट्यरचना में करते हुए दिखाई देते हैं । अर्थात हिंदी नाटय साहित्य भी मराठी नाटक के समान दलित समस्याओं को रंगमंच पर प्रस्तुत कर रहा है। जिससे रंगमंच की दुनिया में आज हिंदी दलित रंगमंच की स्वतंत्र पहचान निर्माण हो चुकी है। वैसे तो दलित जीवन को या दलितों की समस्याओं को केंद्र में रखकर हिंदी में अब तक अनेक नाटक लिखे गए हैं। किन्तु उनमें से अधिकतर नाटकों की प्रस्तुति रंगमंच पर नहीं हुई है। रंगमंच पर प्रस्तुत किए गए प्रयोगधर्मी नाटकों की अगर हम बात करेंगे तो डॉ.एन.सिंह का 'कठौती में गंगा' माताप्रसाद का 'तडप मुक्ति की', शंकर शेष का 'बाढ का पानी' तथा 'एक और द्रोणाचार्य', स्वदेश दिपक का 'कोर्ट मार्शल', प्रताप सहगल का 'लडाई' राजेश कुमार का 'कह रैदास खलास चमारा' आदि प्रमुख नाटक है। इन नाटकों में दलितों के प्रश्नों को, जन्म से दलित होने के कारण बार–बार किए जानेवाले अपमान की पीडा, यातना और दलितपन के आक्रोश तथा क्रोध का जितना सजीव (वास्तववादी) चित्रण किया गया है। उतना ही रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण के लिए उन्हें तैयार किया गया है। अर्थात इन नाटकों की सृष्टी स्वयं नाटककारों ने रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण के लिए ही की गई है। यही कारण है कि इनमें सरल रंग निर्देश दिए हुए दिखाई देते हैं । इनमें से रंगमंच की दृष्टि से स्वदेश दिपकजी का 'कोर्ट मार्शल' अत्यंत सफल नाटक रहा है। डॉ.नामदेव जी के अनुसार ''अंग्रेजी और आठ भारतीय भाषाओं में अनूदित इस नाटक के 2000 से अधिक बार मंचन हिंदी में हो चुके हैं ।''7 'कोर्ट मार्शल' के समान राजेश कुमार द्वारा लिखित ''कह रैदास खलास चमार'' नाटक का भी कई बार सफल मंचन हुआ है। 'लाडाई', 'बाढ का पानी', 'तडप मुक्ती की' आदि नाटयकृतियाँ भी रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक रंग–निर्देश से परिपूर्ण होने के कारण अलग–अलग नाटय–मंडलियों द्वारा विशेष अवसर पर खेले जाने के संदर्भ मिलते हैं। इसके अतिरिक्त दलित रंगमंच की दृष्टि से यह बडी सौभाग्य की बात है कि आज,नयी पीढ़ी के कुछ सशक्त नाटककार दलित रंगमंच को समृध्द बनाने के लिए नए सिरे से प्रयत्न कर रहे हैं, साथ ही साथ आज ऐसी अनेक नाटय मंडलियाँ , नाटय कंपनियॉ, अनेक थियेटर्स, नाटय संस्थाएँ इसके लिए अपनी ओर से सक्रिय योगदान दे रही है। जिससे हम आशा कर सकते हैं कि हिंदी दलित रंगमंच 'भविष्य में अधिक प्रभावी और समृध्द होगा।

निष्कर्षत :–

कहा जाता है कि नाटक और रंगमंच परस्परावलंबी है। हिंदी नाटक रंगमंच ,विदेशी रंग प्रस्तुति के विविध साधन के साथ–साथ हिंदी रंगमंच में दलित रंगमंच प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक रंग–निर्देश से परिपूर्ण होने के कारण अलग–अलग नाटय – मंडलियों द्वारा विशेष अवसर पर खेले जाने के संदर्भ मिलते हैं। हिंदी नाटय साहित्य भी मराठी नाटक के समान दलित समस्याओं को रंगमंच पर प्रस्तुत कर रहा है। जिससे रंगमंच की दुनिया में आज हिंदी दलित रंगमंच की स्वतंत्र पहचान बन हो चुकी है। वैसे तो दलित जीवन को या दलितों की समस्याओं को केंद्र में रखकर हिंदी में अब तक अनेक नाटक लिखे गए हैं। उसका मंच पर प्रस्तुतीकरण प्रत्यक्ष रूप में किया हुआ दिखाई देता है। परंपरागत हिंदी रंगमंच पर दलित जीवन की भयावह स्थिति को प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे दलित समूह की समस्या मंच पर आने से चर्चा के केंद्र में आकर एक नई राह हिंदी दलित नाटक रंगमंच को मिल गई है।

संदर्भ :–

(1) ज्ञानसिंह मान''नाटयवृत्ति और सम्प्रेषण पृ.30 **(2)** रिचर्ड साऊदर्न'सेवन एजैस ऑफ थियेटर पृ.21 **(3)** डॉ.गजानन सुर्वे नाटक और रंगमंच (लेख) संपा.माली पृ.24 **(4)** गोविन्द चालक रंगमंचः कला और दृष्टि पृ.35 **(5)** श्री.वेदपाल खन्ना 'विमल' हिंदी नाटक साहित्य का आलोयनत्मक अध्ययन पृ.05 **(6)** डॉ.गजानन सुर्वे नाटक और रंगमंच (लेख) पृ.258 **(7)** डॉ.नामदेव दलित साहित्य–2012 संपा.कर्दम पृ.62